शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 जून 2018
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

भाषा और समाज का अन्तःसम्बन्ध

डॉ. रीता तिवारी
सहायक प्राध्यापक (हिंदी)
राजकीय महाविद्यालय
चौखुटिया (अल्मोड़ा), हिमाचल प्रदेश, भारत

शोध संक्षेप

भाषा सामाजिक वस्तु है जहां अर्थ की उपेक्षा संभव नहीं न ही भाषा और समाज का अन्तः संबंध भाषा विज्ञान से अलग है (लेबाव)। भाषा की मूल प्रकृति में सामाजिक तत्व अन्तर्मुक्त होते हैं। इसी से भाषा विषमरूपी और विकल्पन मुक्त बनती है। हमारे मानसिक, सामाजिक व्यापार का साधन होने के साथ हमारी चिंतन और शोषण प्रक्रिया दोनों को संजोती है। अतः अपने व्यक्त रूप में वह वैविध्यपूर्ण बन जसी है। संरचना के धरातल पर भाषा अपने विभिन्न व्याकरणिक घटकों ध्वनि, शब्द, वाक्य आदि का संश्लिष्ट रूप है। प्रयोग के प्रयोजनपरक धरातल पर भाषा अपनी उन सामाजिक स्थितियों से भी जुड़ी रहती है, जिनका अध्ययन उसकी प्रकृति को भी उद्घाटित करता है। स्पष्ट है कि भाषा हमारे सामाजिक अनुबंध का माध्यम, हमारे भाव बोध की संवाहिका और हमारी सामाजिक चेतना की अभिव्यंजक है। अतएव भाषा समाज की संप्रेषण व्यवस्था और भाषाओं की प्रकार्यात्मक व्यवस्था जातीय बोध के साथ प्रयुक्त भावरूपों के अंतर को स्पष्ट करती है। भूमिकाजन्य भाषा प्रयोग वस्तुतः समाज भाषाविज्ञान का क्षेत्र है जहां वक्त-श्रोता के आपसी संबंध महत्वपूर्ण होते हैं यानी कौन, किसमें, कब, कहाँ और क्यों कहना है, इसकी जानकारी से भाषा की पूरी और सही समझ आती है। प्रस्तुत शोध पत्र में भाषा और समाज अंत: सम्बन्ध पर विचार किया गया है।

प्रस्तावना

भाषा और समाजगत व्यवहार के द्योतन के साथ समकालीन सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक,पारिवारिक और क्षेत्रीय पृष्ठभूमि का संकेत मिलता है। यानी सर्वनाम प्रयोग भाषिक व्यवहार में हमारे सामाजिक व्यवहार का प्रतीक बनकर सामने आती है। यथा परम्परागत व्याकरणिक एकवचन रूप 'तू' का संदर्भानुसार धृष्टता, तिरस्कार अथवा आत्मीयता का सूचक होना और वक्ता की आयु अथवा पद की श्रेष्ठता का निदर्शन करता; परम्परागत व्याकरणिक बहुवचन रूप 'तुम' का आज एकवचन रूप में मान्य होना; अपेक्षाकृत बाद में आया सर्वनाम रूप 'आप' का श्रोता की आदर और प्रतिष्ठा का परिचायक बन परिस्थिति विशेष में सामाजिक व्यक्तिगत दूरी अथवा अलगाव का द्योतन करना। आप आओ 'जैसे प्रयोग अ-व्याकरण सम्मत होकर भी सामाजिक आवश्यकता उद्भूत प्रचलित है।

वक्ता के चयन को भाषिक और सामाजिक दोनों तरह के नियम नियंत्रित करते हैं और ये नियम यह अपने समाज की सामाजिक रीति (मोड्स) और सामाजिक रचना (कन्स्ट्रक्ट्स) से सम्प्रेषण की अभिवृति और परिवेश के संबधों की परस्पर पहचान से प्राप्त करता है। एक भाषा द्वारा सम्प्रेषण व्यवस्था के समान नियंत्रण और भाषा भाषियों द्वारा समान रूप से समान्य अर्थ की समझ वाला समुदाय सामान्य रूप से एक भाषीय

समुदाय है कि इसके सदस्यों को विशिष्ट सामाजिक स्थितियों को नियंत्रित करने वाले विकल्पों के साथ ही सम्प्रेषण के नियमों का सामान्य ज्ञान रहता है। इसका संबंध वृहद सामाजिक इकाइयों जैसे देश, जाति, धर्म, समूह आदि से भी रहता है। स्पष्ट है कि भाषीय समुदाय ऐसा संस्थागत समूह है जो समान आधार पर प्रतीकों, प्रयोगों और भाषा शैलियों का चयन करता है। हिन्दी समाज में इस दृष्टि से खड़ी बोली के साथ उसकी जनपदीय बोलियों, आधारभूत आरोपित शैलियों सभी का समावेश हो जाता है साथ ही इसके परस्पर संबंधों का प्रतिफलन समाज में विविध रूपों में दिखाई देता है। हिन्दी भाषी कोश की सही समझ के लिये कोड मैट्रिक्स, कोड शैली परिवर्तन को भारतीय, बहुभाषिक प्रकृति के सन्दर्भ में देखना जरूरी है। भारतीय समाज की सक्रिय 'हम-वे' स्थिति में एक ओर उसका अन्तःपक्ष यानि उसकी आभ्यन्तर एकता सामने आती है तो दूसरी ओर उसका अन्तरपक्ष यानि उसकी बाह्य विशेषता उभर कर आती है। भाषा के माध्यम से सम्प्रेषण और प्रतीकन में हम-वे के बीच आदान-प्रदान को मात्र अविकृत सम्पेषण नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यहां भाषा में अन्तर्निहित रूप से विद्यमान आर्थिक संरचना के प्रतिबंधित (निगोशिएटेड) अनुवाद की स्थिति भी दिखाई देती है। स्पष्ट है कि व्यक्तियों के परस्पर अन्तरसंबंधों के योग से सम्भव समानीकरण होता है। उसके िसद्धान्त से ही मनुष्य सामान्य सम्प्रेक्षणपरक दक्षता प्राप्त करता है, जिसमें ध्वनि, वाक्य, अर्थ के साथ सम्प्रेकित (प्रेग्मैटिक) उपचार के अभिलक्षण भी रहते हैं यानि यह पूर्वानुमान कर पाना कि प्रतिकन व्यवस्था है। ये सभी तथ्य इस तथ्य को सामने लाते हैं कि भाषा व्याकरण की सीमा से आगे बढकर सामाजिक संस्था एक संस्कृतिपरक सामाजिक प्रतीक एक साहित्यिक जातीय परम्परा के रूप में सिद्ध है; अर्थात भाषा अपने आप में धर्म, जाति, वर्ग शिक्षा संस्कृति समान आदि सभी की बोधक बनकर सामने आती है।

"भाषा स्वयं में कार्य होने से ही अपने प्रयोक्ताओं की अस्मिता की परिचायक अथवा भाषा समाज में भाषिक या अन्य सामाजिक दबाव की दृष्टि से उसके अलगाव का कारण ही बनती है। इन प्रवृतियों का संबंध क्रमशः भाषा अनुरक्षण और भाषा परिवृत्ति (शिफ्ट) से है। भारतीय बहुभाषिकता की समुदाय परक प्रवृति अलगाव और समीकरण के सिद्धान्तों के साथ पारिवारिक मूल्यों की तरह से मातृभाषा और व्यापक सामाजिक सन्दर्भों में इसी भाषा को अपनाने की प्रवृति भी दिखाती है।'[1]

भारत जैसे बहुभाषिक, बहुसांस्कृतिक एवं बहुजातीय देश में समाज की सहजभाषीय सम्प्रेक्षण व्यवस्था में कहीं भी अवरोध की स्थिति नहीं मिलती। यहां एक मातृभाषा के साथ एकाधिक भाषा रूपों एवं शैलियों का प्रयोग सहज है। बहुभाषा प्रयोग की यह स्थिति हमारी सामाजिक संस्कृति भाषा का सहिष्णुता और इतिहास सार्मिथत प्रामाणिकता की परिचायक है। इस स्पीच नैटवर्क में हमें कहीं भी बेतरतीब रूप नहीं मिलता, क्योंकि इसका संबंध समुदाय विशेष की भाषागत स्थिति (सैटिंग) से है। ये रूप आन्तरिक सम्प्रेषणपरक लक्ष्य साधने की दृष्टि से प्रयोग में लाये जाते हैं। भारतीय भाषीय कोश के संश्लिष्ट 'सम्पूर्ण भाषीय संसाधन' में सामाजिक व्यवहार में बहुबोली परकता (ब्रज, अवधि, मैथिली आदि) बहुशैली परकता (हिन्दी, उर्दू , हिन्दुस्तानी और अंग्रेजी प्रभावित हिन्दी)

तथा बहुभाषिकता (हिन्दी और अंग्रेजी) की स्थिति स्पष्ट दिखाई देती है। तीन सम्प्रेषण स्तर भाषी कोश के विभिन्न कोडों को भाषीय समुदाय के सामाजिक आर्थिक स्तर से जोड़कर यह बताता है कि आदतन कौन-सा कोड किस स्तर पर प्रयुक्त होता है। इस दृष्टि से हिन्दी की बोलियों और शैलियों का सम्बन्ध समाज के स्तरभेद के साथ सीधा जुड़ जाता है।

भाषाभेद के कारण मनुष्य की सामाजिक भूमिका की संकल्पना अनिवार्यतः जुड़ी है। अतः भाषा प्रयोग और उसके प्रयोक्ता के सन्दर्भ में विभिन्न सामाजिक स्थितियों का विवेचन विश्लेषण आवश्यक है। विभिन्न सामाजिक स्थितियों के भाषा प्रयोक्ता का भाषिक व्यवहार बदलने से वक्ता द्वारा प्रयुक्त विभिन्न भाषिक प्रयुक्तियां सामने आती हैं। प्रयुक्ता की भूमिका के सामाजिक सन्दर्भ में ही 'प्रयुक्ति ' देखी जा सकती है, क्योंकि विभिन्न भूमिकाएं विभिन्न भाषा रूपों का प्रयोग सामने लाती है। हैलीडे ने भाषा के प्रयोगत सन्दर्भ और भाषा व्यवहार में भेद किया है। इसी से सन्दर्भानुसार अलग भाषा रूपों का प्रयोग प्रयुक्ति के रूप में सामने आता है। उन्होंने प्रयुक्ति के तीन आधार क्षेत्र बताये हैं, वार्ता-क्षेत्र (तकनीकी-गैरतकनीकी) वार्ता-प्रकार (मौखिक-लिखित) वार्ता-शैली (औपचारिक-अनौपचारिक)।

"भाषा ही एकमात्र ऐसा माध्यम है, जिसके द्वारा समाज आमने सामने रहकर आपस में बातचीत करने के साथ-साथ अतीत एवं भविष्य को भी वर्तमान के साथ जोड़ने में समर्थ हो जाते हैं। सम्प्रेषण और आदान प्रदान की यह शक्ति विशेष रूप से मनुष्य को ही सुलभ है अतः मनुष्य भाषावान सामाजिक प्राणी है।"[2]

भाषा सन्दर्भित ये भाषा-शैली भेद निश्चित् सामाजिक सन्दर्भों की अपेक्षाओं से जुड़े हैं। इसके सामाजिक स्तर भेद का अधिकृमित रूप मिलता है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि सम्प्रेषण व्यवस्था का उपांग बन यह सम्प्रेषण तंत्र समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति को साधने में समर्थ हैं। बहुभाषिक हिन्दी प्रदेश में वैयक्तिक पारिवारिक स्तर पर मात्र बोली भाषा का पारिवारिक स्तर पर स्थानीय बोली का प्रारम्भिक शिक्षा के स्तर पर साक्षरता की माध्यम भाषा -1 के रूप में क्षेत्रीय बोली का, सामान्य शिक्षा के स्तर पर माध्यम भाषा-2 के रूप में हिन्दी का और उच्च शिक्षा के स्तर पर माध्यम भाषा-3 में हिन्दी-अंग्रेजी दोनों का प्रयोग मिलता है।

यद्यपि हिन्दी देवनागिरी उर्दू फारसी लिपि में लिखी जाती है पर इन दोनों को दोनों ही लिपियों में लिखना सम्भव है इसके अतिरिक्त हमें उच्च वर्ग में अंग्रेजी, अंग्रेजी-मिश्रित हिन्दी का प्रयोग तथा सामाजिक दबाव तथा सामाजिक परिस्थिति में हिन्दी-अंग्रेजी, कोड-परिवर्तन की सहज स्थिति भी दिखाई देती है। इसी तरह का कोड परिवर्तन दूसरे स्तर पर हिन्दी की तीनों शैलियों (हिन्दी,उर्दू, हिन्दुस्तानी) में तथा तीसरे स्तर पर हिन्दुस्तानी और बोलियों के बीच सम्भव दिखाई देता है। ये सभी भाषा रूप परस्पर ऐसे संग्रथित है। यह अन्तरसंबंध विभिन्न सामाजिक स्तरों पर विभिन्न रूपों में प्रतिफलित मिलता है, जिसे सामान्यीकृत नियमों में बांधना संम्भव है।

भाषा जैसे सशक्त संवेदनशील और जटिल माध्यम से ही संभाषण द्वारा सार्थक सम्प्रेषण सम्भव होता है, जिसमें शरीर के सभी भाषागत एवं भाषेतर अवयव क्रियाशील होते हैं। इसमें अर्थ का पूर्ण बोध सम्भव होता है। सम्प्रेषण क्षमता का अभिप्राय है भाषा का सहज ज्ञान होने पर

वक्ता को उसके नियमों और समाजगत औचित्य का सहज रूप से ज्ञान होना। प्रयोग के सन्दर्भ समरूप नहीं होते, इसलिये विषमरूपी भाषा भेद भाषा के प्रकृत रूप हैं।

"लोगों का ऐसा समूह जो आपसी सम्प्रेषण के लिये एक-सी भाषा का प्रयोग करे, वह भाषीय समाज कहलाता है। किसी समाज मे एक भाषा और उसकी बोलियों का प्रयोग भी हो सकता है और कई भाषाओं का प्रयोग भी। भाषीय समाज सामान्यतः एक विशेष भौगोलिक क्षेत्र में सीमित होता है पर ऐसा हर भाषा के सन्दर्भ में हो यह आवश्यक नहीं है। उदाहरण के लिये हिन्दी का भाषीय समाज एक भौगोलिक क्षेत्र में सीमित नहीं है। इसका प्रयोग मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, हरियाणा, दिल्ली आदि कई राज्यों में होता है।"[3]

इस दृष्टि से भाषा वास्तव में वर्ग लिंग भेद जातीयता और अस्मिता आदि सभी का बोधक बनकर सामने आती है। आदिम युग में समाज नाते रिश्तों और स्थान से एकजुटता की भावना में बंधता था, सामाजिक वैभिन्य यहाँ लिंग और आयु से प्रतिबंधित रहा। आज के आधुनिक एवं जटिल समाज संरचना में व्यक्ति एकाधिक वर्गों जैसे धर्म, सांस्कृतिक परम्परा निजी आदतें आदि का सदस्य राष्ट्र के सन्दर्भ में बनता है। जातीयता के सामाजिक रूप में मनुष्य अनुवांशिक रूप से विशिश्ट वर्ग सम्मिलन द्वारा दूसरे सामाजिक समूह में भी घुलमिल जाता है। भाषा के वैकल्पिक विविध रूप हमेशा व्याकरणिक विशेषताओं के आधार पर ही निश्चित नहीं होते। यहां अन्य सामाजिक उपादान जैसे धर्म, जाति व्यक्ति का सामाजिक आर्थिक भूमिका निभाते हैं। भाषा की विषमरूपता जीवन की कई क्षेत्रों में समस्या भी पैदा करती है, जैसे शिक्षा राष्ट्रीय विकास अथवा ट्रान्सकल्चरल सम्प्रेषण। हमारी गतिविधियों के क्षेत्र विशेष को इन विविध रूपों के बीच विशिष्ट बनाकर चिह्नित करती है। विषय और भाषिक विकल्पों में से वक्ता द्वारा किसी एक के चयन के साथ यह तथ्य भी महत्वपूर्ण है कि वक्ता दूसरे प्रतिभागियों और उनके वातावरण में खुद को कैसे अनुकूल बनाता है! तदुपरान्त दूसरे उसके प्रति अपनी प्रतिक्रिया कैसे व्यक्त करते हैं। यही वार्तालाप बातचीत का अधिकार प्राप्त करना है।

वक्ता की सामाजिक पृष्ठभूमि लिंग, आयु, जातीयता आदि सभी की संगति है, परन्तु 'सोशल नैटवर्क' इन्हें अभिभूत कर पीछे छोड़ देता है। हमारी भाषा पर उनका सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है, स्कूल या किशोर-काल के समरूपी समुदाय की भाषा इसका प्रमाण है। आज के आधुनिक सन्दर्भ में राष्ट्रीयता और भाषा परस्पर एक-दूसरे के प्रतीक हैं। कानून, अर्थव्यवस्था जैसे प्रमुख कार्यक्षेत्र में महत्ता पाकर ही भाषा राजनीतिक दृष्टि से विशिष्ट बनती है। आज भाषा और राष्ट्रीयता के संबंध ज्यादा जटिल हो गये हैं, क्योंकि जहां संचार माध्यमों की बढ़ती महत्ता भाषा के मानक रूप पर बल देती है। वहीं भाषा 'पोप्यूलर कंसर्न' का विषय भी बन गयी है। बाजार संबंधों के प्रसार तथा जन शिक्षा अभियान ने भी विशिष्ट क्षेत्रों में भाषा के प्रयोग में रूचि उत्पन्न की है। अतः भाषा राष्ट्रीय, सांस्कृतिक और मिथक क्षेत्रों के आगे बढकर राजनीतिक आर्थिक कानूनी और शिक्षागत अभिरूचियों को समेटती है।

"समाज या वातावरण से मनुष्य भाषा सीखता है। भारतवर्ष में उत्पन्न शिशु फ्रान्स में रहकर इसलिये फ्रैन्च बोलने लगता है कि उसके चारों ओर फ्रेन्च का वातावरण रहता है। इसी प्रकार

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 जून 2018
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

भेड़िये का साथी लड़का एक ओर वातावरण के अभाव में मनुष्य की कोई भाषा नहीं सीख सका और दूसरी ओर भेड़िये के साथ रहने से वह उसी की ध्वनि का कुछ रूपों में अर्जन कर सका। अतः भाषा आस-पास के लोगों से अर्जित की जाती है और इसलिये यह पैतृक न होकर अर्जित सम्पत्ति है।"[4]

भाषा और वर्ग

विभिन्न वर्गों के भाषा रूपों में एक ही भाषा का प्रयोग होने पर भी हर प्रतीक में वक्ता श्रोता का अभिविन्यास और विचार निहित रहता है, जिससे वह प्रति वर्ग संघर्ष का परिचायक बन जाता है, क्योंकि प्रति वर्ग वैचारिक प्रतीक का सामाजिक तत्व और उसकी बहु-आघातपरकता महत्वपूर्ण होती है। इसके साथ मूल्य व्यवस्थाओं का योगदान भी स्पष्ट है।

भाषा के प्रतीकात्मक नियमों तथा सामाजिक गठन के संबंध का प्रश्न हल करते है। इसका तात्पर्य है कि समाज के आधारभूत संरचना और सांस्कृतिक संक्रमण द्वारा उसमें परिवर्तन की समस्या। सम्प्रत्यय कोड एक भाषा वैज्ञानिक संकल्पना है, क्योंकि समाज के विभिन्न सबंधित सन्दर्भों में भाषीय फलन से ही सामाजिक संबंधों की संरचना का संगत अर्थ मिलता है। समाज में व्यक्ति अपनी भूमिका और प्रतिष्ठा के अनुसार भाषा का प्रयोग करता है और भूमिका एक जटिल कोडिंग प्रक्रिया है, जहां विशेष परिस्थिति में विशेष अर्थ की व्यवस्था नियंत्रण सम्प्रेषण और ग्रहण भी रहता है। पारिवारिक संबंध आयु वर्ग शैक्षिक तथा कार्यों से संबंध भूमिकाएं इसके साथ ही उन्होंने अपने दो कोडों और उनसे प्राप्त अलग-अलग भाषीय दक्षता और सामाजिक संबंधों की समझ की सामाजिक क्षमता का उल्लेख किया है। इसका आधार उच्चारित रूप यह तर्क पर निर्भर करता है। यहां भाषा में निजी गुण और वैचारिकता भी मिलती है। विशिष्ट शैली, उच्च स्तरीय तार्किकता, भाषिक और भाषेत्तर अभिव्यक्तियों से पूर्ण कथन मिलते हैं। उसका प्रयोग उच्च वर्गीय और मध्य वर्गीय व्यक्तियों के द्वारा औपचारिक सन्दर्भों में किया जाता है। "भाषा ध्वनि प्रतीकों की वह व्यवस्था है जिसके माध्यम से सामाजिक परस्पर विचार विनिमय करते हैं। भाषा का विज्ञान भाषा विज्ञान कहलाता है।"[5]

उच्च वर्ग और निम्न वर्ग के वर्गीकरण का एक आधार सम्पत्ति है, जिसे बीच में मध्य वर्ग आता है दूसरा आधार है स्थान। यहां एक अन्य वर्ग शिक्षा संदर्भित हो सकता है, जिसके अनुसार अंग्रेजी से अभिप्रेरित शिक्षित और हिन्दी से प्रेरित अशिक्षित वर्ग देखे जा सकते हैं। भाषीय विविधता को स्पष्ट करने वाला मुख्य तत्व सामाजिक वर्गीकरण है न कि भौगोलिक। इसका कारण है जातीय स्तर और भाषीय वर्गीकरण में सह संबंध।

भाषा मानव समाज के आन्तरिक भेदों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। एक ओर भौगोलिक सीमाएं क्षेत्रीय बोलियों का निर्धारण करती हैं, तो दूसरी ओर भाषा के सामाजिक परिभेद व्यक्ति की सामाजिक सीमा और अन्तर की पहचान में मदद करते हैं। सामाजिक स्तर भेद सार्वभौमिक नहीं होते वे समाज की अपनी व्यवस्था परिस्थिति और वातावरण के अनुकूल होते हैं, क्योंकि भाषा नियंत्रित होती है सामाजिक वर्ग आयु जाति धर्म शिक्षा आदि से। यही नहीं भाषा अपने व्यक्त रूप में परिस्थिति और समाज संदर्भित होने से ही विषम रूपी भी होती है। भाषा वैविध्य का आधार वस्तुतः समाज के स्तर भेद में देखा जा सकता है, जिसे सामाजिक बोली का

स्वरूप सामने आता है। निम्न मध्य उच्च वर्गों के साथ ही हमें जाति भेद (हिन्दू-मुसलमान) तथा लिंग भेद (स्त्री-पुरूष) भी मिलते हैं। सामाजिक सांस्कृतिक स्तर पर जाति, वर्ग, लिंग और शिक्षा आदि भाषेत्तर पहलुओं से बाधित भाषा रूप मिलते हैं, जो प्रयोक्ता की श्रेणियों के साथ सहयोजित होते हैं। भाषा वह रूप है, जिसका संबंध वर्ग की जुड़ी प्राकार्य से होता है। क्षमता और प्रतिष्ठा के आधार पर प्रयुक्त मध्यम पुरूष सर्वनाम को सामाजिक संबंधों की गत्यात्मक स्थिति का नियामक मानते हुए ब्राउन और गिलमैन ने 'तू तुम आप' सर्वनाम रूपों को सामाजिक स्तर पर शैली जाति, आयु और पारिवारिक संबंधों के परिप्रेक्ष्य में देखा है। वक्ता और श्रोता अथवा दोनों के सामाजिक स्तर के साथ जहां भाषीय विविधता आती है, वहां शैली सामाजिक बन जाती है। यहां हमें क्रमशः 'आप', 'आप तुम', 'और तुम,' 'आप तुम' रूपों का प्रयोग दिखाई देता है।

"भाषा के सामाजिकरण से फा.दे.सस्यूर का अभिप्राय यह है कि भाषा समूह में विद्यमान रहती है किसी भाषा का पूरा भाषिक समुदाय उस भाषा का वाहक होता है। सामूहिक रूप से अलग-अलग लोगों के मस्तिष्क में संकल्पनाओं और शब्दों का व्याकरणिक नियमों का संग्रह होता है। पूरा भाषिक समुदाय सामाजिक अनुबंध से बंधा होता है। कोई एक व्यक्ति पूरी भाषा का धारक नहीं होता है। यही भाषा का सामाजिक पक्ष है।"[6]

भाषा और लिंग भेद

अतः वे भाषा के उन आधारभूत नियंत्रक रूपों पर निर्भर करती है जो भाषिक रूप से 'विस्तृत या व्यापक' अर्थ पर निर्भर रहते हैं। तात्पर्य यह है कि ये लडकियां ऐसी स्थिति में रहती हैं जहां उनके लिये कई तरह की भूमिकाएं तथा कोड परिवर्तन की संभावनाएं रहती हैं। जैसे लड़की-लड़की, लड़की-लड़का, लड़की-नियंत्रणकर्ता लड़की, लडकी- नियंत्रणकर्ता लड़का, माता-पिता लडकी, मध्यस्थ भाई-बहन। यह स्थिति ऐसी है जो परिवार की बड़ी लड़की के भाषागत अभिविन्यास को सवर्था विलग कर विशिष्ट बनाती है। ये सभी तथ्य इस वास्तविकता को रेखांकित करते हैं। लड़के-लड़कियों की भाषा में प्राप्त भिन्नता का एक आंशिक कारण परिवार और समान आयु वर्ग में भूमिका निर्वाह की समझ होता है।

"भाषिक दृष्टि से स्त्री-पुरूष की भाषा में अन्तर होना स्वभाविक है। यह सर्वस्वीकृत सत्य है। सामान्य पुरूषों की भाषा अशिष्ट और कठोर होती है तथा स्त्रियों की भाषा शिष्ट और विनम्र होती है। यहां भिन्न भाषिक प्रकार्यो का अपना महत्व असंदिग्ध रूप से है वह भेद हमें हर स्तर पर व हर जगह दृष्टिगत होता है, चाहे वह अध्ययन हो, शब्द रूप हो या व्याकरणसम्मत प्रयोग हो। स्त्री के साथ एक अतिरिक्त तथ्य विवाहोपरान्त उसका भाषिक वातावरण बदलने का भी जुड़ा रहता है, जिससे उसे पुनः अनुकूलन की प्रक्रिया में से गुजरना पड़ता है।

भाषा विशेष की लिंग भेद की प्रतिदृष्टि और वर्गीकरण की बात लें तो अंग्रेजी में लिंगबोधक अन्य पुरूष सर्वनाम 'ही-सी' मिलते हैं परन्तु हिन्दी में यह लिंग भेद क्रिया रूप अथवा विशेषण के माध्यम से व्यक्त होता है 'जैसे वह जाता/जाती है' अथवा 'अच्छा लड़का /अच्छी लड़की'। सम्बोधन शब्दावली के सन्दर्भ में देखें तो भारतीय संदर्भ में स्त्री अपने पति का नाम नहीं लेती वरन् सर्वनाम का आदरार्थ बहुवचन रूप अथवा संतान के नाम के साथ जोड़कर सम्बोधन करती है। इसी से संबंधित एक अन्य आयाम यह भी है कि पुरूष वर्ग स्त्री के लिये

'तुम या तू' सर्वनाम रूपों का प्रयोग करता है, जबकि स्त्री पुरूष के लिये विशिष्ट प्रतिष्ठा परक मानक रूप 'आप' का प्रयोग करती है।

भाषा और जातीयता

भाषा और सामाजिक व्यवहार हमें परम्परा से मिलते हैं। अतः भाषा जातीयता के तथ्य के रूप में स्वीकार करती है। भाषिक रूप का चयन विषय वस्तुतः व्यापक रूप से सामाजिक सांस्कृतिक आदर्श और अपेक्षाओं से संम्बद्ध रहते हैं। इन्ही से हमें भाषा व्यवहार के प्रयोग क्षेत्र का पता लगता है। ये महत्वपूर्ण तथ्य हैं विषय, भूमिका, सह-संबंध, केन्द्रक।

"भाषा सामाजिक व्यवहार में सम्प्रेषण का एक अन्यतम माध्यम है, किन्तु मात्र इतना कह देने से उनकी परिभाषा नहीं हो जाती। भाषिक व्यवस्था मूलतः मनुष्य के वागेन्द्रियों से उच्चरित सार्थक ध्वनि प्रतीकों का समूह है। ध्वनि प्रतीकों में व्यवस्थापरक होती है ये प्रतीक यादृच्छिक और रूढ होते है।"[7]

भाषा के अध्ययन और विवेचन में इस तथ्य पर सदैव बल दिया जाता रहा है कि भाषा की पहचान का आधार उसकी व्याकरणिक संरचना न होकर उसके प्रयोग और व्यवहार के विविध सन्दर्भ होते हैं। हिन्दी भाषी समुदाय के लिये हिन्दी अखिल भारतीय सम्पर्क भाषी समुदायों जैसे गुजराती, बंगाली, तमिल आदि के प्रति वह हमें प्रकृति का परिचय भी देती है। यह वस्तुतः हिन्दी का जनपदीय संदर्भ है। हमारी सामाजिक और जातीय अस्मिता का सवाल हमारे समाज और हमारी जातीय व्यवस्था से जुड़ा है। भाषा की जातीय अस्मिता का एक सटीक उदाहरण है बांग्लादेश। पाकिस्तान के जन्म का आधार धर्म था परन्तु पूर्वी पाकिस्तान की मुस्लिम समुदाय की जाति और भाषी अस्मिता का संबंध धर्म से न होकर बांग्ला भाषा के साथ जुड़ा था। भारतीय भाषाओं के परिदृश्य में भाषीय अस्मिता के साथ प्रान्तीय अस्मिता भी दृष्टिगत होती है। इसका प्रमाण भाषावार प्रान्तों का गठन है, जो अभी भी विवाद का विषय है। उदाहरण के लिये हम हिन्दी और उर्दू का विवाद ले सकते हैं। हर प्रान्त का मुस्लिम व्यक्ति एक ओर अपनी प्रान्तीय भाषा का प्रयोग करता है तो दूसरी ओर भाषीय अस्मिता के सवाल पर उर्दू की ओर देखता है। भारत में हिन्दू-मुस्लिम संबंधों में एक हिंसक प्रतिद्वन्द्विता दृष्टिगत होती है, जिसका संबंध राष्ट्रीय और धर्मगत मूल्यों से जुड़ा है।

"समाज का उन मानवीय संबंधों की जटिलता या सम्पूर्णता मानते हैं जो साधन और साध्य के संबंध द्वारा क्रिया करने से आये हों चाहे वो संबंध यथार्थ हो या प्रतीकात्मक।"[8]

सामाजिक प्रतिद्वन्द्वों से जुड़ी अन्तर साम्प्रदायिक जातीयता ही जाति और समाज संरचना को परिभाषित करती है। जाति समूहगत व्यवहार हमेशा अर्जित किया जाता है। जाति में भेड़ चाल व्यवहार अपने समान अभिरूचि वाली सामाजिकता में और सम्प्रदायिकता से गढी भावना में तब मिलता है जब अन्धानुकरण की भावना अपनी पहचान एकजुटता से जुड़ी रहती है। जातीयता का सामाजिक रूप अनुवांशिक रूप से विशिष्ट वह वर्ग है जो अपनी सम्मिलन भावना से दूसरे सामाजिक समूह में घुलमिल जाता है। सामाजिक समूहों के रूप में जातीयता का तात्पर्य उस समूह से है, जो पीढी दर पीढी किन्ही सामाजिक सांस्कृतिक परम्पराओं का अनुगमन करता है।

यह तथ्य भी महत्वपूर्ण है कि यद्यपि पहली भाषा मातृभाषा होती है पर उसका दूसरा पक्ष व्यक्ति के सामाजिक संस्कार और सांस्कृतिक

चेतना से जुड़ा हुआ है। यह सर्वविदित है कि समाज और समुदाय से जुड़कर ही व्यक्ति को जीवन जगत से जुड़ने का दूसरा आयाम मिलता है। जिसकी रचना उस समुदाय की जाति इतिहास, सांस्कृतिक चेतना और साहित्य संस्कार से होती है। हिन्दी का अपना जनपदीय इतिहास है। उसकी सांस्कृतिक चेतना और साहित्यधारा से मिलकर हिन्दी जनपद की एक निश्चित इकाई के रूप में बदलती है। साथ ही उसके इतिहास, साहित्य और उसकी संस्कृति की भूमिका भी प्रदान करते हैं। इसलिये विभिन्न क्षेत्रीय बोलियों की पहली मातृभाषा मानने वाले भी हिन्दी को एक सामाजिक संस्था और जातीय सम्पदा के रूप में स्वीकार करते हैं।

इससे यह स्पष्ट होता है कि अस्मिता वस्तुतः मातृभाषा का ही एक दूसरा पक्ष है जिससे हिन्दी अपने जनपद में सहयोजित मातृभाषा के रूप में स्वीकार की जाती है।

भाषायी समाज के बीच सम्पर्क भाषा काम करने लगती है और अन्ततः वह सामाजिक अस्मिता का आधार बन जाती है। यथा खड़ी बोली ऐसी स्थिति में उच्च वर्ग में किसी शिक्षित व्यक्ति की बोली/ भाषा बनकर अपने स्वरूप को प्रयोजनहीन कर अपने भाषा वैविध्य को कम करती है जिससे भाषा विकल्पन की प्रवृति कम होने लगती है यह भी उल्लखनीय है कि सभी भारतीय भाषायी समुदाय बहु भाषिक और बहु शैली परक है एक ओर तो इसने हमारी संस्कृति को सामाजिक बनाने में अन्यतम योगदान दिया दूसरी ओर अपनी भाषायी चेतना के आधार पर हर भाषा ने अपने स्तर पर एक जातीय अस्मिता भी पैदा की है जिसके आधार पर बोलियों और शैलियों के बीच सामंजस्य पैदा होता है।

"एक समाज कुछ विशेष तरह के संबंधों से बंधे हुए व्यक्तियों का ऐसा संग्रह है जो उन्हें उन व्यक्तियों से पृथक करता है जिनके व्यवहार उनसे भिन्न है।"[9]

भारतीय संन्दर्भ में यह सत्य भी है। हमें याद रखना होगा कि यहाँ बहुभाषिकता हमारे समाज की जड़ तक फैली हुई है, जिसकी यर्थाथ प्रकृति को समझे बिना भाषा के आधार पर निर्मित जाति अथवा सामाजिक अस्मिता के सबंध में कोई भी निर्णय लेना सम्भव नहीं है। यह ठीक है कि भाषा की व्यवस्था जातीयता के रंग से मुक्त होती है और स्वयं में भाषा धार्मिक-अधार्मिक नहीं होती। ये सभी रंग भाषा को उसके प्रयोक्ताओं द्वारा मिलते हैं। यही कारण है कि भाषा को जातीय अस्मिता के रूप में साधने के हमेशा ऐतिहासिक और सामाजिक कारण होते हैं। भारत में राष्ट्रीय एकता और स्वाधीनता की एकमात्र भाषा हिन्दी है।

सामान्य रूप से एक समुदाय के एक सी भाषा का प्रयोग करने पर भी उसमें कई भिन्न समूहों में साझेदारी रहने में उनके भाषिक अभिलक्षणों में अन्तर करना सम्भव होता है। इस तरह भाषा व्यक्ति की जातीयता की सूचक भी है। क्योंकि एक जाति समूह विशिष्ट भाषा रूप को अहम समझता है। हिन्दी में प्रचलित अभिवादन शब्दावली को ही लें तो प्रणाम, नमस्ते, चरणस्पर्श, आदाबअर्ज और हैलो अथवा जय श्री कृष्ण या राम-राम, जय श्री राम जैसे रूपों में से किसी एक का चयन निश्चित रूप से उसकी जातीय अस्मिता का परिचय देने के साथ कुछ अतिरिक्त सूचना भी देता है। यह भी ध्यातव्य है कि जब कोई समुदाय किसी प्रमुख भाषा रूप को अपनी जातीयता प्रतीक के रूप में अपनाता है, तो उसकी खुद की भाषा लुप्त हो जाती है। इससे

भी उनकी जातीय अस्मिता का परिचय मिलता है। यही कारण है कि समुदाय के कुछ लोग अपनी संस्कृति की विशिष्टताओं को ध्यान में रखकर बोलने की शैली विकसित करते हैं। नित्य प्रति की बातचीत में मिलने वाले भाषा भेद से भी लोगों के सामाजिक नेटवर्क को पहचाना जा सकता है। भाषा की अभिरचना को समझने-समझाने की दृष्टि से यह संकल्पना मूल्यवान है, क्योंकि समाज संजाल से सामाजिक अभिलक्षणों का केन्द्र बदल जाता है। इन जातीय सामाजिक समुदायों के वाक व्यवहार की विशेषता से संबद्ध अभिलक्षणों को मानक और स्थानिक जनभाषा के विभेद से बताया जाता है। जाति पहचान के रूप में भाषा की विशिष्ट सार्थकता इस तरह स्वयं सिद्ध है।

"समाज एक अमूर्त धारणा है जो एक समूह के सदस्यों के बीच पाये जाने वाले संबंधों की सम्पूर्णता का बोध कराती है।"[10]

भाषा और अस्मिता

भाषायी अस्मिता का तात्पर्य है भाषा बोलने वालों की अपनी पहचान। भाषा की इसी पहचान का संबंध सत्ता से होता है जो हमें ताकत देती है यह भी कहा गया है कि भाषा की पहचान का संबंध लिपि की पहचान से जुड़ा है, क्योंकि यह एक संस्कृति के दौरान विकसित हुई है। जैसे पंजाबी गुरूमुखी और उर्दू दोनों लिपियों में लिखी जा सकती है। इसी अस्मिता की पकड़ के लिये श्रीमती सोनल मानसिंह नृत्य प्रशिक्षण में देवनागरी का प्रयोग करती हैं। यह भी याद रखना होगा कि प्रत्येक भाषा की अपनी अस्मिता से जुड़ी समस्याएं भिन्न-भिन्न होती हैं। अस्मिता के भाषायी तत्वों को कई आधारों पर देखा जा सकता है जैसे शारीरिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, भौगोलिक, सांदर्भिक, जातीय, राष्ट्रीय आदि। मनोवैज्ञानिक आधार से जुड़ी अस्मिता एक ओर हमें मितभाषी, औपचारिक और अन्तर्मुखी व्यक्तित्व और दूसरी ओर बहुत बोलने वाला सक्रिय जीवन्त बहुर्मुखी व्यक्तित्व देती है। सामाजिक अस्मिता का प्रतिफलन रंग शब्दावली में देखा जा सकता है, क्योंकि इसका संबंध समाज की एक भौतिक स्थिति से है। एक समाज में भाषा के दो या दो से अधिक रूप प्रयुक्त होते हैं जैसे औपचारिक और अनौपचारिक रूप। भौगोलिक अस्मिता का संबंध भी भाषा से घनिष्ठ रूप से है। इसी से अंग्रेजी में जहां बर्फ के लिये 'आइस और स्नो' ये दो शब्द प्रचलित है जबकि एस्किमो भाषा में बर्फ की विभिन्न स्थितियों और चरणों के प्रत्यक्षीकरण से जुडे कई शब्द हैं। इससे यह तथ्य सामने आता है कि प्रत्यक्षीकरण के स्थान पर उसका केन्द्र किस पर है यह सवाल ज्यादा महत्वपूर्ण है।

अस्मिता का कोई अधिक्रम नहीं होता है, क्योंकि धर्म व्यवसाय राजनीति भाषा साहित्य संस्कृति आदि की दृष्टि से अनेक समुदायों में से किसी भी समूह या वर्ग की सदस्यता अस्मिता के लिये महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकती है। दो धर्म या जाति के आधार पर बनी पहचान महत्वपूर्ण होती है। हिन्दू-मुसलमान की जातिगत धर्मगत पहचान राष्ट्रीय या मानवीय पहचान के धरातल पर नगण्य सिद्ध होगी। धर्मगत अस्मिता भी इस दायरे से बाहर नहीं है। उदाहरण अफगानिस्तान में इस्लाम से इसाई धर्म परिवर्तन करने पर व्यक्ति मृत्यु दण्ड का भागी बनता है। यह स्थिति वस्तुतः तर्कशक्ति पर लगे प्रतिबंध की परिचायक है। दलित पहचान की दृष्टि से जरूरी होकर भी उच्च वर्ग से अपनी अस्मिता जोड़ने के प्रयास में उसे भुलाने के लिये भी तत्पर और समर्थ हो सकती है। भारत की बहुसंस्कृति

परकता की प्रकृति सामासिक है। बहुत पुरानी और सोची समझी हुई है, वहीं ब्रिटिश माडल में यह स्थिति प्रवासियों के धर्म और जाति से जुडकर आज सामने आयी है, क्योंकि धर्मगत पहचान राष्ट्रीय अस्मिता से जुडी नहीं होती है। धर्मगत स्वतंत्रता देने की अकबर की सोच और जरूरत, एक ऐसी नई शुरूआत थी जिसकी शक्ति को पूरा संसार मानता है।

"समाज एक व्यवस्था है। सामाजिक संबंधों का जाल है और समाज की व्यवस्था सदा एक-सी नहीं रहती। इसमें सतत बदलाव का गुण पाया जाता है। समाज एक सरल प्रकार की व्यवस्था नहीं है, इसमें जटिलता का तत्व विद्यमान है।"[11]

भारतीय संदर्भ में भाषा और अस्मिता की बात करते हुए हमें उसकी बहुसांस्कृतिक बहुजातीय और बहुभाषी स्थिति को ध्यान में रखना होगा, जिसके कारण उसकी सामाजिक अस्मिता की प्रवृति का एकात्मक होना संभव नहीं। जिस देश में 1652 मातृभाषाएं, 200 वर्गीकृत भाषाएं और 10 लिपियों का परिचलन हो, वहां उसकी सामाजिक प्रवृति में विविध संदर्भों में विविध भाषा प्रयोग का मिलना स्वभाविक तो है ही। साथ ही हर भारतीय संदर्भ में यह स्थिति एक स्तरीकृत अधिक्रम के रूप में सामने आती है। इससे दो स्थितियां उभर कर सामने आती हैं। एक तो भारत में स्कूली शिक्षा के बिना ही मातृबोली भाषा और क्षेत्रीय भाषा के सतत प्रयोग से व्यक्ति का द्विभाषिक बनना तथा इन भाषा रूपों से जुड़ी प्रयोग एवं प्रयोजनपरख भूमिकाओं के संदर्भों से व्यक्ति का सही सरल परिचय। साथ ही शिक्षा की प्रारम्भिक स्थिति से इसके जुड़ने पर हिन्दी के प्रयोग की जानकारी हर समुदाय के भाषायी कोश में तीन भाषाओं की स्थिति स्पष्ट करती है। दूसरे भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था की स्तरी और अधिक्रमित प्रवृति के अनुरूप ही देश के सम्प्रेक्षण तंत्र की स्थिति मिलती है। इन विविध प्रयोजनधर्मी भूमिकाओं को हर व्यक्ति अपनी बहुभाषी प्रवृति एवं भाषायी कोश के विभिन्न घटकों द्वारा साधता है, जिससे हिन्दी भाषायी समाज का व्यक्तित्व एक सामान्य संतुलित और समन्वित रूप में सामने आता है।

हिन्दी भाषी समाज के संदर्भ में यह स्थिति भी स्मरणीय है कि यहां ऐसी बोली समुच्चय की स्थिति दिखाई देती है, जिसमें एक ओर मागधी अपभ्रंश से निकली बिहारी उपभाषा की मगही, मैथिली, भोजपुरी बोलियां, असमिया और बांग्ला भाषा है, दूसरी ओर नागर अपभ्रंश से सम्बद्ध राजस्थानी उप भाषा वर्ग की मालवी, मेवाती, हड़ोती बोलियां एवं गुजराती, मराठी भाषाएं हैं। इन दोनों उपवर्गों में शौरसैनी अपभ्रंश से विकसित पश्चिमी हिन्दी की ब्रज, कौरवी आदि बोलियां और अर्द्ध मागधी अपभ्रंश से उत्पन्न पूर्वी हिन्दी की अवधि, बघेली, छत्तीसगढ़ी आदि बोलियों से तादाम्य स्थापित कर हिन्दी भाषी समाज की संकल्पना को सामाजिक-सांस्कृतिक अर्थवत्ता प्रदान की है। वंशानुक्रम की दृष्टि से सभी बोलियों की सत्ता अलग है और उनकी व्याकरणिक संरचना खड़ी बोली की अपेक्षा उपभाषाओं के अधिक निकट है। फिर भी हिन्दी समाज द्वारा घरेलू जीवन में बोलियों का प्रयोग करना, साथ ही विद्यापति, सूर, तुलसी जैसे रचनाकारों को हिन्दी की जाति अस्मिता के परिचायक के रूप में स्वीकार कर उसे हिन्दी की साहित्यिक परम्परा में परिगणित करना इस तथ्य का प्रमाण है कि अपनी अस्मिता के रूप में हिन्दी एक ही है। दूसरी ओर यह भी सच है कि यही हिन्दी भाषी समुदाय अपनी शिक्षा और

व्यवहार के औपचारिक संदर्भों में उस खड़ी बोली का प्रयोग करता है, जिसमें आधुनिक हिन्दी साहित्य की रचना की गयी है। यह भी सच है कि सम्प्रेषण के धरातल पर ये सभी बोलियां और भाषा रूप सम्पर्क भाषा हिन्दी के रूप में एक सूत्र में बंधकर भावात्मक संदर्भ में हिन्दी की जातीय अस्मिता का परिचायक बनते हैं। स्पष्ट है कि संस्थागत प्रतीक के रूप में भाषा ही हमारी सामाजिक-सांस्कृतिक अस्मिता का माध्यम बन सामने आती है। भाषीय समाज के रूप में हिन्दी की सत्ता एक समाजिक यथार्थ है, जिसे इतिहास चक्र में बोलियों के वंशानुक्रम के संबंध का अतिक्रमण कर एक निश्चित अर्थवत्ता प्रदान की है। इसका कारण यह है कि भाषा हमारी सामाजिक अस्मिता का सशक्त माध्यम है। भाषा एक समाज के लोगों को भावना, चिंतन, दर्शन की दृष्टि से परस्पर जोड़ती है और 'मैं' और 'हम' समुदाय के विस्तार का साधन बनती है। यही नहीं सामाजिक अस्मिता के रूप में भाषा का सिद्ध होना ही उस समाज को तोड़ने-जोड़ने की शक्ति देता है, क्योंकि यह एक साथ अपनी 'आभ्यान्तर एकता और वाह्य विशिष्टता' दोनों को साधती है तो वहीं दूसरी ओर यह क्षेत्र विविध क्षेत्रीय समाजों के रूप में एक विशिष्ट इकाई भी सिद्ध होता है। भारतीय बहुभाषिक संदर्भ भाषा के माध्यम से एक ओर क्षेत्रीय रंग लाने के साथ समुदाय विशेष की भावात्मक विशेषता और अन्य समुदायों से उसका विद्वेष दोनों को ही सिद्ध करता है। जिसके कारण यही भाषा शिक्षित-अशिक्षित, स्त्री- पुरूष, उच्च-मध्य-निम्न वर्ग आदि को जोड़ या उकसा सकती है।

भाषा के माध्यम से राष्ट्रीय अस्मिता की पहचान के लिये एक भारतीय भाषा का प्रतीक के रूप में होना अनिवार्य है। व्यावहारिक धरातल पर हिन्दी राष्ट्र भाषा और सम्पर्क भाषा के दोनों रूपों में सिद्ध होने पर भी प्रशासनिक मान्यता प्राप्त नहीं कर सकी है। संविधान 'देवनागरी' लिपि में लिखी जाने वाली हिन्दी को 'संघ की राष्ट्रभाषा' तो मानता है। इसमें भारत की स्वीकृत 22 राष्ट्रीय भाषाएं भी उल्लिखित हैं, परन्तु राष्ट्रभाषा शब्द का प्रयोग संविधान में नहीं किया गया है। हमें यह याद रखना होगा कि राष्ट्र की संकल्पना से संबध आर्थिक और प्रशासनिक प्रयोजनों की भाषा 'राजभाषा' है जो राजनैतिक सफलता का आधार है। राष्ट्रभाषा की संकल्पना इसके विपरीत राष्ट्रीयता के आधार पर जाति प्रमाणिकता और सामाजिक अस्मिता की भाषा होने के कारण हमारी सांस्कृतिक एकता का आधार है। गांधीजी के अनुसार राष्ट्रभाषा के लिये उसके बोलने वालों का बहुसंख्यक होना देश के लिये उसका सहज रूप से उपलब्ध होना, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक क्षेत्र में माध्यम भाषा बनने की शक्ति होना और उसका सरकारी कर्मचारियों के लिये सहज-सुलभ होना ये चार गुण होना जरूरी है। हिन्दी ऐसी ही भाषा है। इसलिये राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी का सही चुनाव है, परन्तु उसे अंग्रेजी की स्थानापन्न भाषा के रूप में उभारने की शासकीय प्रक्रिया हमारी सबसे बड़ी भूल है। सच तो यह है कि इस प्रक्रिया में भाषा को समाज से जोड़ने वाले तत्वों को अनदेखा कर उसे समाप्त कर दिया गया, जिससे हिन्दी का विरोध शुरू हो गया। हमारी दूसरी भूल यह रही कि राजभाषा और राष्ट्रभाषा के पीछे के प्रयोजनों के सही संदर्भ को न समझकर हमने उन्हें द्वन्द्व के रूप में उभार कर अपनी भाषायी समस्या का हल ढूँढने का प्रयत्न किया। देश की सामाजिक-सांस्कृतिक स्थिति उसकी सामाजिक अस्मिता और संबंधों की सही समझ जरूरी है। यही नहीं

प्रशासनिक और सामाजिक स्तरों पर संस्थाओं की स्तरीयकृत बनावट भाषा के आधार पर बनी हमारी अस्मिता की तनाव की संभावना से युक्त सोपानिक और स्तरीकृत प्रकृति तथा प्रभुतासम्पन्न की अपेक्षा प्रयोजन परक भाषा दृष्टि की आवश्यकता को याद रखना भी जरूरी है। सामाजिक अस्मिता का आधार वस्तुतः वे सामाजिक संबंध हैं जो इस सवाल से जुड़े हैं कि कौन किससे कहां किस विषय पर बात कर रहा है। इस रूप में भाषा हमारी संस्कृति और परम्परा से जुड़कर हमारी अस्मिता की परिचायक ही नहीं वरन् अपनी पहचान के रूप् में अपनी सार्थकता की स्वयंसिद्ध प्रतीक बनकर सामने आती है।

"समाज का तात्पर्य व्यक्तियों के किसी भी समूह अथवा संगठन से है। जब हम हिन्दू समाज, मुस्लिम समाज अथवा इसाई समाज जैसे शब्दों का प्रयोग करते हैं, तब यहां पर समाज से हमारा अभिप्राय व्यक्तियों के एक संगठन से ही होता है। इसी तरह क्षेत्र, भाषा प्रजाति से संबंधित लोगों को भी एक-एक समाज के रूप में स्पष्ट कर देना एक सामान्य-सी बात है।"[12]

भाषा और राष्ट्रीयता के संबंध आज बहुत जटिल हो गये हैं। संचार माध्यमों की बढती महत्ता भाषा के मानक रूप पर बल देती है और भाषा जनहित का विषय भी बन गयी है। इसके अतिरिक्त बाजार सम्बन्धों के प्रसार और जन शिक्षा अभियान ने भी विविध क्षेत्रों में भाषा के प्रयोग में रूचि उत्पन्न की है, जिससे भाषा की प्रासंगिक संगति उसकी राष्ट्रीय-सांस्कृतिक-मिथिकीय कोषागार के रूप में ही नहीं रहती वरन् भाषा आगे बढकर राजनैतिक आर्थिक, कानूनी अशिक्षा के हित को भी समेटती है। भाषा राष्ट्र की सर्वाधिक सशक्त पहचान है, क्योंकि उसमें बांधने और जोडने की शक्ति सबसे ज्यादा है। इसी से राष्ट्र तब तक सुरक्षित है जब तक भाषा अपनी परम्पराओं को सुरक्षित रखती है। एशिया और अफ्रीका के स्वाधीनता संग्राम भाषा से जुड़ी सांस्कृतिक परम्परा और उसकी राष्ट्रीयता अस्मिता के पक्ष को सामने लाती है। स्पष्ट है कि भाषा हमारी राष्ट्रीय अस्मिता का प्रमुख तत्व ही नहीं वरन् वह राष्ट्र निमार्ण की प्रक्रिया का एक विशेष विषय भी है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अस्मिता और जातीयता से जुड़कर अथवा वर्ग लिंग भेद की परिचायक बनकर भाषा अपनी शक्ति और सीमाओं दोनों का उद्घाटन करती है। आज के युग की आवश्यकताओं के अनुरूप अपना अनुकूलन भाषा के लिये जरूरी है, परन्तु अपनी विरासत को सुरक्षित रखते हुए ही उसे निरन्तर विकसित और समृद्ध होना है। संस्थागत प्रतीक के रूप में भाषा जीवन जगत के विभिन्न आयामों को समेट सही समझ के साथ एक अखण्ड शक्ति के रूप में उभरती है। यही नहीं यह तथ्य समाज भाषा विज्ञान के व्यापक परिपेक्ष में भाषा विज्ञान के सिमटने के पक्षधर भाषाविदों की मान्यता की भी पुष्टि करता है। साथ ही भाषा अध्ययन को पूर्ण बनाने की दिशा में अग्रसर होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 विमलेश कान्ति वर्मा, भाषा, साहित्य और संस्कृति, पृष्ठ 70

2 डॉ. केशव दत्त रूवाली, आधुनिक भाषा विज्ञान, पृष्ठ 21

3 डॉ.भोलानाथ तिवारी, भाषा विज्ञान, पृष्ठ 406

4. डॉ.भोलानाथ तिवारी, भाषा विज्ञान, पृष्ठ 57

5 डॉ.केशव दत्त रूवाली, आधुनिक भाषा विज्ञान, पृष्ठ 3

6. विमलेश कान्ति वर्मा, भाषा, साहित्य और संस्कृति, पृष्ठ 8

7 डॉ..केशव दत्त रूवाली, आधुनिक भाषा विज्ञान, पृष्ठ 22

8 जे.पी.मिश्रा, समाज शास्त्र परिचय, पृष्ठ 109

9. जी.के.अग्रवाल, समाजशास्त्र पृष्ठ 46

10 जे.पी.मिश्रा, समाज शास्त्र परिचय, पृष्ठ 109

11 जे.पी.मिश्रा, समाज शास्त्र परिचय, पृष्ठ 110

12 जी.के.अग्रवाल, समाजशास्त्र पृष्ठ 39